विश्वशान्ति का एक मात्र उपाय—

भगवान् महावीर का अपरिग्रहवाद

श्री नरेन्द्रकुमार भानावत, 'साहित्यरत्न'

मनुष्य की अन्तिम मंज़िल की अगर कोई कसौटी है तो वह है शांति. चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र में हम इसे मुक्ति कह कर पुकारें, चाहे दार्शनिक वेश में हम उसे वीतराग भावना कहें। इसी शांति की शोध में मनुष्य युग युग से जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहा है। लेकिन आज २० वीं शताब्दि में शांति का क्षेत्र व्यापक एवं जटिल हो गया है। आज व्यक्तिगत शांति के महत्त्व से भी अधिक महत्त्व समष्टिगत शांति (विश्वशांति) का है। इस सामूहिक शांति की प्राप्ति के लिए मानव ने अनेक साधन ढूंढ निकाले। विभिन्न वादों के विवादों का प्रतिवाद भी उसने किया। मार्क्सवाद की विचार-धारा में भी वह बहा। लेकिन अबतक उसे शांति नहीं मिल पाई है। इसका मूल कारण है आर्थिक वैषम्य। आज के विज्ञान से लदे भौतिकवादी युग में रोटी-रोजी-शिक्षा-दीक्षा के जितने भी साधन हैं उन पर मानवसमाज के इने गिने व्यक्तियों के उस वर्ग ने कब्जा कर लिया जो कि निर्दयी एवं स्वार्थी बनकर अपने धन के नशे में मदमाता है। दूसरी ओर अधिकांश ऐसे व्यक्तियों का वर्ग है जो गरीबी में पल रहा है। धन और श्रम के इस भयानक अन्तर और विरोध ने मानव के बीच में दीवाल खड़ी कर दी है। इसी विषमता का चित्रण प्रगतिशील कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' की इन पंक्तियों में देखिये—

"श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर—जाड़ों की रात बिताते हैं॥
युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक तब तेल फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं॥"

एक ओर ऐसा वर्ग है जो पेट और पीठ एक किये दाने दाने के लिए तरसता है तो दूसरी ओर चांदी की चटनी से वेष्टित ऐसे पकवान हैं जिन्हें खाकर लोग बीमार हो जाते हैं। एक ओर रहने के लिए—सर्दी, गर्मी, पावस से अपनी रक्षा करने के लिए, टूटा छप्पर तक नसीब नहीं तो दूसरी ओर वे बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं हैं जिनमें भूत बोला करते हैं। इसी भेद-भाव को मिटाने के लिए नवीन नवीन विचारों को लेकर विचारकों ने नये नये वादों की सृष्टि की है। लेकिन जितने भी वाद वर्तमान में प्रचलित हैं सभी अधूरे हैं। किसी में रक्तपात है तो किसी में स्वार्थभाव। किसी में अव्यवहारिकता है तो किसी में कोरा खयालीपुलाव। लेकिन एक ऐसा साधन और हल (वाद) है जिस को आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व क्रांतदर्शी भगवान् महावीर ने मनोमन्थन कर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रतिपादित किया था। वह है "सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जउं" सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। इस पावन एवं पुनीत भावना का जन्म और विकास अगर मानव-हृदय में हो सकता है तो वह भगवान् महावीर के अनोखे एवं व्यावहारिक अपरिग्रह वाद के सिद्धान्त के बल पर।

अपरिग्रह का वर्णन जगत् के सम्पूर्ण धार्मिक ग्रन्थों में पाया जाता है। लेकिन जैनधर्म में इसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष महत्त्व देकर इसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति ने कहा है "मूर्च्छापरिग्रहः"—अर्थात्—परिग्रह का अर्थ मूर्च्छाभाव—सांसारिक भौतिक पदार्थों में ममत्व या निजत्व की भावना। किसी भी पदार्थ के प्रति ममत्व की भावना नहीं रखना, यह अपरिग्रह है। आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु का संग्रह करना जहाँ एक ओर समाज के प्रति अन्याय है, वहाँ दूसरी ओर अपनी आत्मा का पतन है। अर्थात् तेरे मेरे के भेदभाव को छोड़कर, संग्रह प्रवृत्ति को त्यागकर, अपरिग्रहवृत्ति का अवलम्बन लेकर आज विश्व में जो द्वन्द्व और तनाव है उसे शांतिमय तरीके से कम करने की प्रेरणा हमें अपरिग्रहवाद से लेनी है। जिनके पास पैसा नहीं है वे अगर यह समझते हों कि हम अपरिग्रही हैं तो वे भूल करते हैं। अपरिग्रही भावना का सम्बन्ध बाह्य धनदौलत से न होकर हृदय की भावना से है। अतः धनवानों को यह नहीं सोचना चाहिए कि हम अपरिग्रही बन ही नहीं सकते। भगवान् महावीर की तो वाणी है कि अगर एक भिखारी के पास केवल तन ढकने को फटा-पुराना चिथड़ा है लेकिन अगर उस चिथड़े के प्रति भी उसका मूर्च्छाभाव है तो वह भिखारी उस पूंजीपति से ज्यादा परिग्रही है जिसके पास करोड़ों की दौलत है पर उसे वह अपनी नहीं समझता और जो मूर्च्छाभाव से मुक्त है। अपरिग्रही भावना के विकसित होने पर ही धनपति का क्रूर हृदय भी करुणा से पिघल जाता है। दान और दया की वाहिनी कल कल करती हुई बह उठती है, जिसके प्रेम और अभेदमूलक व्यवहार भरे नीर में अवगाहन कर लड़खड़ाती मानवता निर्मल एवं निडर हो शांति का सांस लेने लगती है।

भगवान् महावीर ने गृहस्थों के बारह व्रत बतलाये हैं। उनपर अगर सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि उसके मूल में अधिकतम आर्थिक समता स्थापित करने की भावना निहित है, गृहस्थी को मर्यादित और नियमित बनाने की ध्येय है। मर्यादित जीवन में कभी अतिरेक और अतिक्रमण के अभाव में न खुद में अशांति होती है और न दूसरों को अशान्त करने की भावना प्रबल हो सकती है।

बारह व्रत

(१) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत	(२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत।
(३) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत	(४) स्थूल अब्रह्मचर्य विरमण व्रत।
(५) स्थूल परिग्रह विरमण व्रत	(६) दिग्व्रत।
(७) देश व्रत	(८) अनर्थदण्ड विरमण व्रत।
(९) सामायिक व्रत	(१०) देशावशिक व्रत।
(११) पौषध व्रत	(१२) अतिथि संविभाग व्रत।

उपर्युक्त बारह व्रतों में प्रथम के पांच व्रतों में 'स्थूल' शब्द इसलिये रख गया है कि गृहस्थी हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का सर्वथा व सर्व प्रकारेण त्याग नहीं कर सकता। अतः उनका स्थूल दृष्टि से त्याग करने का विधान है। तात्त्विक दृष्टि से इनका महत्त्व मनुष्य को मर्यादित बनाने और उसे संग्रहशील न बनाने में है। प्रथम चार व्रतों में हमें जहां तक हो सके हिंसा, झूठ, चोरी और अब्रह्मचर्य का त्याग रखना चाहिए। अपरिग्रह व्रत इसलिए है कि मनुष्य आवश्यकता से अधिक संग्रह न करे। अधिक संग्रह की प्रवृत्ति ने ही आज मानव समुदाय को अशान्त बना रखा है। इसलिए भगवान् महावीर का कथन है कि प्रत्येक गृहस्थ अपनी आवश्यकताओं को निर्धारित कर यह नियम करे कि मुझे इससे अधिक द्रव्य नहीं रखना। अगर अधिक द्रव्य बढ जाय तो उसे जनता जनार्दन की सेवा में लगा देना है। ऐसा करने से दूसरे गरीब लोग उसका उपयोग कर जीवन को गति दे पायेंगे। इससे लोभवृत्ति कम होगी। द्रव्यप्राप्ति की होड़हड़प वाली नीति में होने वाले पापकर्म रुकेंगे। इस व्रत में केवल द्रव्य की ही मर्यादा नहीं होती, चलअचल सभी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की सम्पत्ति का आवश्यकतानुसार परिमाण करना पड़ता है। हमारे सामने आनन्द, कामदेव आदि श्रावकों का आदर्श विद्यमान है जिन्होंने इन व्रतों को ग्रहण कर शांति की स्थापना की। इस परिग्रहपरिमाण की पुष्टि के लिए ही छठा, सातवां और आठवां व्रत हैं। अर्थात् गृहस्थ यह प्रतिज्ञा करे कि मुझे प्रत्येक दिशा में अमुक से अधिक सीमा में व्यापार के लिए नहीं जाना है। इससे विषम भोगों की, वैलासिक जीवन की, प्रतिस्पर्द्धा की लालसा न बढ़ेगी। प्रतिदिन मनुष्य के उपयोग में आनेवाली प्रत्येक वस्तु की भी गृहस्थ मर्यादा करे। ऐसे पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—

(१) भोग्य—जो वस्तु एक बार उपयोग में आने के बाद दूसरी बार न भोगी जाय—
जैसे—अन्न, जल, विलेपन आदि।

(२) उपभोग्य—जो वस्तु एक से अधिक बार उपयोग में आती हो—
जैसे—मकान, कपड़ा, गहना आदि।

इन सारी चीज़ों की प्रातः उठकर गृहस्थ मर्यादा करे कि अमुक वस्तु मुझे दिन में कितनी बार और कितने परिमाण में काम में लानी है।

अन्तिम चार व्रतों का विधान भी आध्यात्मिक बल उत्पन्न करने एवं अपरिग्रहवृत्ति बढ़ाने के निमित्त है। बहु आरंभी एवं परिग्रही नरक का भागीदार होता है जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र में कहा है "बह्वारंभ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः" अतः हमें परिग्रह का त्याग कर अपरिग्रह की ओर झुकना चाहिये क्योंकि: "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य" यह मनुष्य आयु प्रदान करता है।

आज दुनिया दो शक्तियों (Power-blocks) में बंटी हुई है।

(१) पूंजीवादी दल—जिसका नेतृत्व अमेरिका कर रहा है।

(२) साम्यवादी दल—जिसका नेतृत्व रूस कर रहा है।

दोनों अपने अपने स्वार्थ के लिये लड़ रहे हैं और विश्व के तमाम राष्ट्रों को युद्धाग्नि में घसीटने का प्रयत्न कर रहे हैं। अगर एक सच्चे गृहस्थ की तरह ये राष्ट्र भी भगवान् महावीर के सिद्धान्तों—परिग्रह-परिमाणव्रत—को ग्रहण कर आवश्यकता से अधिक संगृहीत वस्तु का दान उन राष्ट्रों को कर दें जिनको इनकी जरूरत हो तो मैं दावे के साथ कहा सकता हूं कि विश्व में शांति स्थापित हो जायगी। पिछले दो महायुद्ध हुए जिनका मूल कारण भी यही परिग्रहवृत्ति थी। महावीर का देश भारत आज नये स्वर में उसी सिद्धान्त का प्रचार सर्वोदय, पंचशील, शांतिमय सहअस्तित्व (Peaceful co-existence) के रूप में कर रहा है। अगर प्रत्येक राष्ट्र छठे व्रत के अनुसार प्रत्येक दिशा में अपनी अपनी मर्यादानुसार भूमि का परिमाण करले तो यह युद्धलिप्सा मिट जाय, यह एटमबाजी समाप्त हो जाय, ये प्रलय के बादल प्रणय की बूँदों में बदल जायँ। गांधीजी के सुशिष्य विनोबाजी इसी भावना से प्रेरित होकर भूदान आन्दोलन कर रहे हैं जिसके अन्तर्गत सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, कूपदान, साधनदान और श्रमदान का सूत्र पाल कर अपरिग्रह की भावना का विकास कर रहे हैं और उन्हें काफी सफलता मिली है तथा मिलती जा रही है। प्रगतिशील कवि 'दिनकर' ने 'कुरुक्षेत्र' में लिखा है—

"शांति नहीं तब तक जब तक,
सुख-भाग न नर का सम हो।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भावना उदित करने में न तो हिंसक मार्क्सवाद ही सहायक हो सकता है और न कोरा आदर्श वाद। अगर इस प्रकार का वातावरण कोई बना सकता है तो वह महावीर का अपरिग्रहवाद जिसका प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक रूप श्रमण-संघ के जीते जागते त्यागमूर्ति, वीतरागी तथा क्रियाशील सेवाभावी तपस्वियों में देखा जा सकता है। इस अस्तेय एवं अपरिग्रह के द्वारा जो शांति स्थापित होगी वह तलवार के बल पर स्थापित होने वाली न तो अकबर महान् की शांति होगी, न विश्वविजयी सिकन्दर जैसी–लेकिन वह शांति तो ऐसी शांति होगी जिसके लिए "दिनकर" लिखते हैं—

"ऐसी शांति राज्य करती है,
तन पर नहीं हृदय पर।
नर के ऊंचे विश्वासों पर,
श्रद्धा भक्ति प्रणय पर॥"

अंग्रेजी में एक लेखक ने लिखा है कि "The less I have the more I am" अर्थात् हमारे पास जितना कम परिग्रह होगा, उतने ही हम महान् होंगे। सचमुच धनदौलत के पाने से, दीनदुःखी को लूटने से कोई महान् नहीं बनता। महान् बनता है त्याग से, अपरिग्रह और अस्तेय से। अगर हम सोने को भी छिपा छिपा कर, ममत्व भाव रखकर, धरती में गाड़ रखेंगे तो वह मिट्टी बन जायगा। तालाब के पानी की तरह हम अगर धनतादौलत को इकट्ठी कर उसका यथोचित उपयोग न करेंगे तो वह सड़ जायगी। शेक्सपियर ने इसी बात को फूल के रूपक में कितना अच्छा कहा है।

"Sweetest things turn sourest by their deeds,
Lilies that faster smell far worse than weeds."

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम "Eat, drink and be merry" जैसे चार्वाक-सिद्धान्त को छोड़कर "Live and let live" को आचरण में लाकर अपरिग्रहवाद का सम्बल लेकर विश्वमार्ग के पथिक बनें, फिर सचमुच शांति हमारे पैर चूमेगी।

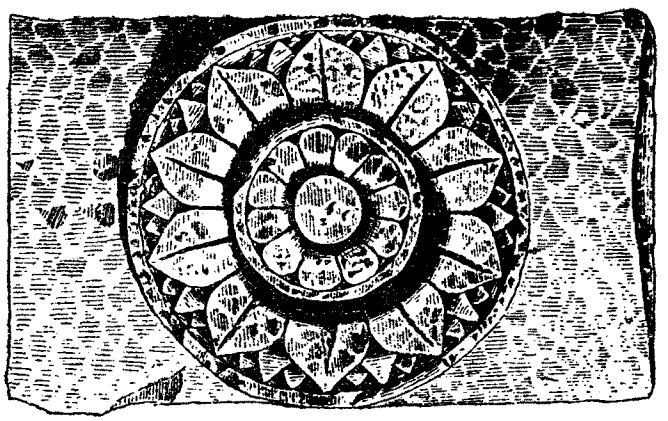

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org